ओमप्रकाश वाल्मीकि

(सन् 1950-2013)

ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म बरला, ज़िला मुज़फ़्फ़रनगर, उत्तर प्रदेश में हुआ। उनका बचपन सामाजिक एवं आर्थिक कठिनाइयों में बीता। पढ़ाई के दौरान उन्हें अनेक आर्थिक, सामाजिक और मानसिक कष्ट झेलने पड़े।

वाल्मीकि जी कुछ समय तक महाराष्ट्र में रहे। वहाँ वे दलित लेखकों के संपर्क में आए और उनकी प्रेरणा से डॉ. भीमराव अंबेडकर की रचनाओं का अध्ययन किया। इससे उनकी रचना-दृष्टि में बुनियादी परिवर्तन हुआ। वे देहरादून स्थित आप्टो इलैक्ट्रॉनिक्स फ़ैक्टरी (ऑर्डिनेंस फ़ैक्ट्रीज़, भारत सरकार) में एक अधिकारी के रूप में कार्यरत रहे। बाद में सेवानिवृत्त हो गए। सन् 2013 में अस्वस्थ हो गए और दिल्ली में ही उन्होंने अंतिम साँस ली।

हिंदी में दलित साहित्य के विकास में ओमप्रकाश वाल्मीकि की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। उन्होंने अपने लेखन में जातीय अपमान और उत्पीड़न का जीवंत वर्णन किया है और भारतीय समाज के कई अनछुए पहलुओं को पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है। वे मानते हैं कि दलित ही दलित की पीड़ा को बेहतर ढंग से समझ सकता है और वही उस अनुभव की प्रामाणिक अभिव्यक्ति कर सकता है। उन्होंने सृजनात्मक साहित्य के साथ-साथ आलोचनात्मक लेखन भी किया है। उनकी भाषा सहज, तथ्यपरक और आवेगमयी है। उसमें व्यंग्य का गहरा पुट भी दिखता है। नाटकों के अभिनय और निर्देशन में भी उनकी रुचि है। अपनी आत्मकथा ***जूठन*** *के कारण उन्हें हिंदी साहित्य में पहचान और प्रतिष्ठा मिली। उन्हें सन् 1993 में* ***डॉ. अंबेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार*** *और सन् 1995 में* ***परिवेश सम्मान*** *से अलंकृत किया जा चुका है।* ***जूठन*** *के अंग्रेज़ी संस्करण को* ***न्यू इंडिया बुक पुरस्कार, 2004*** *प्रदान किया गया।*

उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं – ***सदियों का संताप, बस! बहुत हो चुका*** *(कविता संग्रह);* ***सलाम, घुसपैठिये*** *(कहानी संग्रह),* ***दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र*** *तथा* ***जूठन*** *(आत्मकथा)।*

पाठ्यपुस्तक में संकलित कहानी ***खानाबदोश*** *में मज़दूरी करके किसी तरह गुज़र-बसर कर रहे मज़दूर वर्ग के शोषण और यातना को चित्रित किया गया है। मज़दूर वर्ग यदि ईमानदारी से मेहनत-मज़दूरी करके इज़्ज़त के साथ जीवन जीना चाहता है, तो सूबे सिंह जैसे समृद्ध और ताकतवर लोग उन्हें जीने नहीं देते। कहानी इस बात की ओर भी संकेत करती है कि मज़दूर वर्ग हमारे समाज की जातिवादी मानसिकता से नहीं उबर पाया है। कहानी में वास्तविकता उत्पन्न करने में इसके स्थानीय संवाद सहायक बने हैं।*

खानाबदोश

सुकिया के हाथ की पथी कच्ची ईंटें पकने के लिए भट्ठे में लगाई जा रही थीं। भट्ठे के गलियारे में झरोखेदार कच्ची ईंटों की दीवार देखकर सुकिया आत्मिक सुख से भर गया था। देखते–ही–देखते हज़ारों ईंटें भट्ठे के गलियारे में समा गई थीं। ईंटों के बीच खाली जगह में पत्थर का कोयला, लकड़ी, बुरादा, गन्ने की बाली भर दिए गए थे।

असगर ठेकेदार ने अपनी निगरानी में हर चीज़ तरतीब से लगवाई थी। आग लगाने से पहले भट्ठा–मालिक मुखतार सिंह ने एक–एक चीज़ का मुआयना किया था।

चौबीसों घंटे की ड्यूटी पर मज़दूरों को लगाया गया था, जो मोरियों से भट्ठे में कोयला, बुरादा आदि डाल रहे थे। भट्ठे का सबसे खतरेवाला काम था मोरी पर काम करना। थोड़ी–सी असावधानी भी मौत का कारण बन सकती थी।

भट्ठे की चिमनी धुआँ उगलने लगी थी। यह धुआँ मीलों दूर से दिखाई पड़ जाता था। हरे–भरे खेतों के बीच गहरे मटमैले रंग का यह भट्ठा एक धब्बे जैसा दिखाई पड़ता था।

मानो और सुकिया महीनाभर पहले ही इस भट्ठे पर आए थे, दिहाड़ी मज़दूर बनकर। हफ़्तेभर का काम देखकर असगर ठेकेदार ने सुकिया से कहा था कि साँचा ले लो और ईंट पाथने का काम शुरू करो। हज़ार ईंट के रेट से अपनी मज़दूरी लो। भट्ठे पर लगभग तीस मज़दूर थे जो वहीं काम करते थे। भट्ठा–मालिक मुखतार सिंह और असगर ठेकेदार साँझ होते ही शहर लौट जाते थे। शहर से दूर, दिनभर की गहमा–गहमी के बाद यह भट्ठा अँधेरे की गोद में समा जाता था।

एक कतार में बनी छोटी–छोटी झोंपड़ियों में टिमटिमाती ढिबरियाँ भी इस अँधेरे से लड़ नहीं पाती थीं। दड़बेनुमा झोंपड़ियों में झुककर घुसना पड़ता था। झुके–झुके ही बाहर आना होता था। भट्ठे का काम खत्म होते ही औरतें चूल्हा–चौका सँभाल लेती थीं। कहने भर के लिए चूल्हा–चौका था। ईंटों को जोड़कर बनाए चूल्हे में जलती लकड़ियों की चिट–पिट जैसे मन में पसरी दुश्चिंताओं और तकलीफ़ों की प्रतिध्वनियाँ थीं जहाँ सब कुछ अनिश्चित था। मानो अभी तक इस भट्ठे की ज़िंदगी से तालमेल नहीं बैठा पाई थी। बस, सुकिया की ज़िद के सामने वह कमज़ोर पड़ गई थी। साँझ होते ही सारा माहौल भाँय–भाँय करने लगता था। दिनभर के थके–हारे मज़दूर अपने–अपने दड़बों में घुस जाते थे। साँप–बिच्छू का डर लगा रहता था। जैसे समूचा जंगल झोंपड़ी के दरवाज़े पर आकर खड़ा हो गया है। ऐसे माहौल में मानो का जी घबराने लगता था। लेकिन करे भी तो क्या, न जाने कितनी बार सुकिया से कहा था मानो ने, "अपने देस की सूखी रोटी भी परदेस के पकवानों से अच्छी होती है।"

सुकिया के मन में एक बात बैठ गई थी। नर्क की ज़िंदगी से निकलना है तो कुछ छोड़ना भी पड़ेगा। मानो की हर बात का एक ही जवाब था उसके पास बड़े–बूढ़े कहा करे हैं कि "आदमी की औकात घर से बाहर कदम रखणें पे ही पता चले है। घर में तो चूहा भी सूरमा बणा रह। काँधे पर यो लंबा लट्ठ धरके चलणें वाले चौधरी सहर (शहर) में सरकारी अफ़सरों के आग्गे सीध्धे खड़े न हो सके हैं। बुड्ढी बकरियों की तरह मिमियाएँ हैं...और गाँव में किसी गरीब कू आदमी भी न समझे हैं..."

सुकिया की इन बातों से मानो कमज़ोर पड़ जाती थी। इसीलिए गाँव–देहात छोड़कर वे दोनों एक दिन असगर ठेकेदार के साथ इस भट्ठे पर आ गए थे।

पहले ही महीने में सुकिया ने कुछ रुपये बचा लिए थे। कई–कई बार गिनकर तसल्ली कर ली थी। धोती की गाँठ में बाँधकर अंटी में खोंस लिए थे। रुपए देखकर मानो भी खुश हो गई थी। उसे लगने लगा था कि वह अपनी ज़िंदगी के ढर्रे को बदल लेगा।

सुकिया और मानो की ज़िंदगी एक निश्चित ढर्रे पर चलने लगी थी। दोनों मिलकर पहले तगारी बनाते, फिर मानो तैयार मिट्टी लाकर देती। इस काम में उनके साथ एक तीसरा मज़दूर भी आ गया था। नाम था जसदेव। छोटी उम्र का लड़का था। असगर ठेकेदार ने उसे भी उनके साथ काम पर लगा दिया था। इससे काम में गति आ गई थी। मानो भी अब फुर्ती से साँचे में ईंटें डालने लगी थी, जिससे उनकी दिहाड़ी बढ़ गई थी।

उस रोज़ मालिक मुखतार सिंह की जगह उनका बेटा सूबेसिंह भट्ठे पर आया था। मालिक कुछ दिनों के लिए कहीं बाहर चले गए थे। उनकी गैरहाज़िरी में सूबेसिंह का रौब-दाब भट्ठे का माहौल ही बदल देता था। इन दिनों में असगर ठेकेदार भीगी बिल्ली बन जाता था। दफ़्तर के बाहर एक अर्दली की ड्यूटी लग जाती थी, जो कुर्सी पर उकड़ू बैठकर दिनभर बीड़ी पीता था, आने-जानेवालों पर निगरानी रखता था। उसकी इजाज़त के बगैर कोई अंदर नहीं जा सकता था।

एक रोज़ सूबेसिंह की नज़र किसनी पर पड़ गई। तीन महीने पहले ही किसनी और महेश भट्ठे पर आए थे। पाँच-छः महीने पहले ही दोनों की शादी हुई थी।

सूबेसिंह ने उसे दफ़्तर की सेवा-टहल का काम दे दिया था। शुरू-शुरू में किसी का ध्यान इस ओर नहीं गया था। लेकिन जब रोज़ ही गारे-मिट्टी का काम छोड़कर वह दफ़्तर में ही रहने लगी तो मज़दूरों में फुसफुसाहटें शुरू हो गई थीं।

तीसरे दिन सुबह जब मज़दूर काम शुरू करने के लिए झोंपड़ियों से बाहर निकल रहे थे, किसनी हैंडपंप के नीचे खुले में बैठकर साबुन से रगड़-रगड़कर नहा रही थी। भट्ठे पर साबुन किसी के पास नहीं था। साबुन और उससे उठते झाग पर सबकी नज़र पड़ गई थी। लेकिन बोला कोई कुछ भी नहीं था। सभी की आँखों में शंकाओं के गहरे काले बादल घिर आए थे। कानाफूसी हलके-हलके शुरू हो गई थी।

महेश गुमसुम-सा अलग-अलग रहने लगा था। साँवले रंग की भरे-पूरे जिस्म की किसनी का व्यवहार महेश के लिए दुःखदाई हो रहा था। वह दिन-भर दफ़्तर में घुसी रहती थी। उसकी खिलखिलाहटें दफ़्तर से बाहर तक सुनाई पड़ने लगी थीं। महेश ने उसे समझाने की कोशिश की थी। लेकिन वह जिस राह पर चल पड़ी थी वहाँ से लौटना मुश्किल था।

भट्ठे की ज़िंदगी भी अजीब थी। गाँव-बस्ती का माहौल बन रहा था। झोंपड़ी के बाहर जलते चूल्हे और पकते खाने की महक से भट्ठे की नीरस ज़िंदगी में कुछ देर के लिए ही सही, ताज़गी का अहसास होता था। ज़्यादातर लोग रोटी के साथ गुड़ या फिर लाल मिर्च की चटनी ही खाते थे। दाल-सब्ज़ी तो कभी-कभार ही बनती थी।

शाम होते ही हैंडपंप पर भीड़ लग जाती थी। जिस्म पर चिपकी मिट्टी को जितना उतारने की कोशिश करते, वह और उतना ही भीतर उतर जाती थी। नस-नस में कच्ची मिट्टी की महक बस गई थी। इस महक से अलग भट्ठे का कोई अस्तित्व नहीं था।

किसनी और सूबेसिंह की कहानी अब काफ़ी आगे बढ़ गई थी। सूबेसिंह के अर्दली ने महेश को नशे की लत डाल दी थी। नशा करके महेश झोंपड़ी में पड़ा रहता था। किसनी के पास एक ट्रांजिस्टर भी आ गया था। सुबह-शाम भट्ठे की खामोशी में ट्रांजिस्टर की आवाज़ गूँजने लगी थी। ट्रांजिस्टर वह इतने ज़ोर से बजाती थी कि भट्ठे का वातावरण फ़िल्मी गानों की आवाज़ से गमक उठता था। शांत माहौल में संगीत-लहरियों ने खनक पैदा कर दी थी।

कड़ी मेहनत और दिन-रात भट्ठे में जलती आग के बाद जब भट्ठा खुलता था तो मज़दूर से लेकर मालिक तक की बेचैन साँसों को राहत मिलती थी। भट्ठे से पकी ईंटों को बाहर निकालने का काम शुरू हो गया था। लाल-लाल पक्की ईंटों को देखकर सुकिया और मानो की खुशी की इंतहा नहीं थी। खासकर मानो तो ईंटों को उलट-पुलटकर देख रही थी। खुद के हाथ की पथी ईंटों का रंग ही बदल गया था। उस दिन ईंटों को देखते-देखते ही मानो के मन में बिजली की तरह एक खयाल कौंधा था। इस खयाल के आते ही उसके भीतर जैसे एक साथ कई-कई भट्ठे जल रहे थे। उसने सुकिया से पूछा था, "एक घर में कितनी ईंटें लग जाती हैं?"

"बहुत...कई हज़ार...लोहा, सीमेंट, लकड़ी, रेत अलग से।" उसके मन में खयाल उभरा था। उसे तत्काल कोई आधार नहीं मिल पा रहा था। वह बेचैन हो उठी थी।

उसे खामोश देखकर सुकिया ने कहा, "चलो, काम शुरू करना है। जसदेव बाट देख रहा होगा।" सुकिया के पीछे-पीछे अनमनी ही चल दी थी मानो, लेकिन उसके

दिलो–दिमाग पर ईंटों का लाल रंग कुछ ऐसे छा गया था कि वह उसी में उलझकर रह गई थी।

झींगुरों की झिन–झिन और बीच–बीच में सियारों की आवाज़ें रात के सन्नाटे में स्याहपन घोल रही थीं। थके–हारे मज़दूर नींद की गहरी खाइयों में लुढ़क गए थे। मानो के खयालों में अभी भी लाल–लाल ईंटें घूम रही थीं। इन ईंटों से बना हुआ एक छोटा–सा घर उसके ज़ेहन में बस गया था। यह खयाल जिस शिद्दत से पुख्ता हुआ था, नींद उतनी ही दूर चली गई थी।

दूर किसी बस्ती से हलके–हलके छनकर आती मुर्गे की बाँग, रात के आखिरी पहर के अहसास के साथ ही मानो की पलकें नींद से भारी होने लगी थीं।

सुबह के ज़रूरी कामों से निबटकर जब सुकिया ने झोंपड़ी में झाँका तो वह हैरान रह गया था। इतनी देर तक मानो कभी नहीं सोती। वह परेशान हो गया था। गहरी नींद में सोई मानो का माथा उसने छूकर देखा, माथा ठंडा था। उसने राहत की साँस ली। मानो को जगाया, "इतना दिन चढ़ गया है....उठने का मन नहीं है?"

मानो अनमनी–सी उठी। कुछ देर यूँ ही चुपचाप बैठी रही। मानो का इस तरह बैठना सुकिया को अखरने लगा था, "आज क्या बात है?...जी तो ठीक है?"

मानो अपने खयालों में गुम थी। मन की बात बाहर आने के लिए छटपटा रही थी। उसने सुकिया की ओर देखते हुए पूछा, "क्यों जी...क्या हम इन पक्की ईंटों पर घर नहीं बणा सके हैं?"

मानो की बात सुनकर सुकिया आश्चर्य से उसे ताकने लगा। कल की बात वह भूल चुका था। सुकिया ने गहरे अवसाद से भरकर कहा, "पक्की ईंटों का घर दो–चार रुपए में ना बणता है।...इत्ते ढेर–से नोट लगे हैं घर बणाने में। गाँठ में नहीं है पैसा, चले हाथी खरीदने।"

"महीनेभर में जो हमने इत्ती ईंटें बणा दी हैं...क्या अपणे लिए हम ईंटें ना बणा सके हैं।" मानो ने मासूमियत से कहा।

"यह भट्ठा मालिक का है। हम ईंटें उनके लिए बणाते हैं। हम तो मज़दूर हैं। इन ईंटों पर अपणा कोई हक ना है।" सुकिया ने अपने मन में उठते दबाव को महसूस किया।

"इन ईंटों पर म्हारा कोई भी हक ना है...क्यूँ...", मानो ने ताज्जुब भरी कड़ुवाहट से कहा। उसके अंदर बवंडर मचल रहा था। कुछ देर की खामोशी के बाद मानो बोली, "हर महीने कुछ और बचत करें...ज़्यादा ईंटें बनाएँ...तब?... तब भी अपणा घर नहीं बणा सकते?" अपने भीतर कुलबुलाते सवालों को बाहर लाना चाहती थी मानो।

"इतनी मज़दूरी मिलती कहाँ है? पूरे महीने हाड़-गोड़ तोड़ के भी कितने रुपए बचे! कुल अस्सी। एक साल में एक हज़ार ईंटों के दाम अगर हमने बचा भी लिए तो घर बणाने लायक रुपया जोड़ते-जोड़ते उम्र निकल जागी। फेर भी घर ना बण पावेगा।" सुकिया ने दुखी मन से कहा।

"अगर हम रात-दिन काम करें तो भी नहीं?" मानो ने उत्साह में भरकर कहा।

"बावली हो गई है क्या?...चल उठ...चल, काम पे जाणा है। टेम ज़्यादा हो रहा है। ठेकेदार आता ही होगा। आज पूरब की टाँग काटनी है लगार के लिए।" सुकिया मानो के सवालों से घबरा गया था। उठकर बाहर जाने लगा।

"कुछ भी करो...तुम चाहो तो मैं रात-दिन काम करूँगी...मुझे एक पक्की ईंटों का घर चाहिए। अपने गाँव में...लाल-सुर्ख ईंटों का घर।" मानो के भीतर मन में हज़ार-हज़ार वसंत खिल उठे थे।

सुकिया और मानो को एक लक्ष्य मिल गया था। पक्की ईंटों का घर बनाना है...अपने ही हाथ की पकी ईंटों से। सुबह होते ही काम पर लग जाते हैं और शाम को भी अँधेरा होने तक जुटे रहते हैं। ठेकेदार असगर से लेकर मालिक तक उनके काम से खुश थे।

सूबेसिंह किसनी को शहर भी लेकर जाने लगा था। किसनी के रंग-ढंग में बदलाव आ गया था। अब वह भट्ठे पर गारे-मिट्टी का काम नहीं करती थी। महेश रोज़ रात में नशा करके मन की भड़ास निकालता था। दिन में भी अपनी झोंपड़ी में पड़ा रहता था या इधर-उधर बैठा रहता था। किसनी कई-कई दिनों तक शहर से लौटती नहीं थी। जब लौटती – थकी, निढाल और मुरझाई हुई। कपड़ों-लत्तों की अब कमी नहीं थी।

उस रोज़ सूबेसिंह ने भट्ठे पर आते ही असगर ठेकेदार से कहा था, "मानो को दफ़्तर में बुलाओ, आज किसनी की तबीयत ठीक नहीं है।"

असगर ठेकेदार ने रोकना चाहा था, "छोटे बाबू मानो को..."

बात पूरी होने से पहले ही सूबेसिंह ने उसे फटकार दिया था, "तुमसे जो कहा गया है, वही करो। राय देने की कोशिश मत करो। तुम इस भट्ठे पर मुंशी हो। मुंशी ही रहो, मालिक बनने की कोशिश करोगे तो अंजाम बुरा होगा।"

असगर ठेकेदार की घिघ्घी बँध गई थी। वह चुपचाप मानो को बुलाने चल दिया था। असगर ठेकेदार ने आवाज़ देकर कहा था, "मानो, छोटे बाबू बुला रहे हैं दफ़्तर में।"

मानो ने सुकिया की ओर देखा। उसकी आँखों में भय से उत्पन्न कातरता थी। सुकिया भी इस बुलावे पर हड़बड़ा गया था। वह जानता था। मछली को फँसाने के लिए जाल फेंका जा रहा है। गुस्से और आक्रोश से नसें खिंचने लगी थीं। जसदेव ने भी सुकिया की मनःस्थिति को भाँप लिया था। वह फुर्ती से उठा। हाथ-पाँव पर लगी गीली मिट्टी छुड़ाते हुए बोला, "तुम यहीं ठहरो...मैं देखता हूँ। चलो चाचा।" असगर के पीछे-पीछे चल दिया।

असगर ठेकेदार जानता था कि सूबेसिंह शैतान है। लेकिन चुप रहना उसकी मजबूरी बन गई थी। ज़िंदगी का खास हिस्सा उसने भट्ठे पर गुज़ारा था। भट्ठे से अलग उसका कोई वजूद ही नहीं था।

असगर ठेकेदार के साथ जसदेव को आता देखकर सूबेसिंह बिफर पड़ा था। "तुझे किसने बुलाया है?"

"जी...जो भी काम हो बताइए...मैं कर दूँगा।..." जसदेव ने विनम्रता से कहा।

"क्यों? तू उसका खसम है...या उसकी (...पर चर्बी चढ़ गई है)।" सूबेसिंह ने अपशब्दों का इस्तेमाल किया।

"बाबू जी...आप किस तरह बोल रहे हैं..." जसदेव के बात पूरी करने से पहले ही एक झन्नाटेदार थप्पड़ उसके गाल पर पड़ा।

"जानता नहीं...भट्ठे की आग में झोंक दूँगा...किसी को पता भी नहीं चलेगा। हड्डियाँ तक नहीं मिलेंगी राख से... समझा।" सूबेसिंह ने उसे धकिया दिया। जसदेव गिर पड़ा था।

जब तक वह सँभल पाता। लात–घूँसो से सूबेसिंह ने उसे अधमरा कर दिया था। चीख–पुकार सुनकर मज़दूर उनकी ओर दौड़ पड़े थे। मज़दूरों को एक साथ आता देखकर सूबेसिंह जीप में बैठ गया था। देखते–ही–देखते जीप शहर की ओर दौड़ गई थी। असगर ठेकेदार दफ़्तर में जा घुसा था।

सुकिया और मानो जसदेव को उठाकर झोंपड़ी में ले गए थे। वह दर्द से कराह रहा था। मानो ने उसकी चोटों पर हल्दी लगा दी थी। सुकिया गुस्से में काँप रहा था। मानो के अवचेतन में असंख्य अँधेरे नाच रहे थे। वह किसनी नहीं बनना चाहती थी। इज़्ज़त की ज़िंदगी जीने की अदम्य लालसा उसमें भरी हुई थी। उसे एक घर चाहिए था – पक्की ईंटों का, जहाँ वह अपनी गृहस्थी और परिवार के सपने देखती थी।

समूचा दिन अदृश्य भय और दहशत में बीता था। जसदेव को हलका बुखार हो गया था। वह अपनी झोंपड़ी में पड़ा था। सुकिया उसके पास बैठा था। आज की घटना से मज़दूर डर गए थे। उन्हें लग रहा था कि सूबेसिंह किसी भी वक्त लौटकर आ सकता है। शाम होते ही भट्ठे पर सन्नाटा छा गया था। सब अपने–अपने खोल में सिमट गए थे। बूढ़ा बिलसिया जो अकसर बाहर पेड़ के नीचे देर रात तक बैठा रहता था, आज शाम होते ही अपनी झोंपड़ी में जाकर लेट गया था। उसके खाँसने की आवाज़ भी आज कुछ धीमी हो गई थी। किसनी की झोंपड़ी से ट्रांज़िस्टर की आवाज़ भी नहीं आ रही थी।

बीच–बीच में हैंडपंप की खंच–खंच ध्वनि इस खामोशी में विघ्न डाल रही थी। पंप जसदेव की झोंपड़ी के ठीक सामने था। सभी को पानी के लिए इस पंप पर आना पड़ता था।

भट्ठे पर दवा–दारू का कोई इंतज़ाम नहीं था। कटने–फटने पर घाव पर मिट्टी लगा देना था। कपड़ा जलाकर राख भर देना ही दवाई की जगह काम आते थे।

मानो ने अधूरे मन से चूल्हा जलाया था। रोटियाँ सेंककर सुकिया के सामने रख दी थी। सुकिया ने भी अनिच्छा से एक रोटी हलक के नीचे उतारी थी। उसकी भूख जैसे अचानक मर गई थी। मानो को लेकर उसकी चिंता बढ़ गई थी। उसने निश्चय कर लिया था वह मानो को किसनी नहीं बनने देगा।

मानो भी गुमसुम अपने आपसे ही लड़ रही थी। बार–बार उसे लग रहा था कि वह सुरक्षित नहीं है। एक सवाल उसे खाए जा रहा था– क्या औरत होने की यही सज़ा है। वह जानती थी कि सुकिया ऐसा–वैसा कुछ नहीं होने देगा। वह महेश की तरह नहीं है। भले ही यह भट्ठा छोड़ना पड़े। भट्ठा छोड़ने के खयाल से ही वह सिहर उठी। नहीं...भट्ठा नहीं छोड़ना है। उसने अपने आपको आश्वस्त किया, अभी तो पक्की ईंटों का घर बनाना है।

मानो रोटियाँ लेकर बाहर जाने लगी तो सुकिया ने टोका, "कहाँ जा रही है?"

"जसदेव भूखा–प्यासा पड़ा है। उसे रोट्टी देणे जा रही हूँ।" मानो ने सहज भाव से कहा।

बामन तेरे हाथ की रोट्टी खावेगा।...अक्ल मारी गई तेरी," सुकिया ने उसे रोकना चाहा।

"क्यों मेरे हाथ की रोट्टी में ज़हर लगा है?" मानो ने सवाल किया। पल–भर रुककर बोली, "बामन नहीं भट्ठा मज़दूर है वह...म्हारे जैसा।"

चारों तरफ़ सन्नाटा था। जसदेव की झोंपड़ी में ढिबरी जल रही थी। मानो ने झोंपड़ी का दरवाज़ा ठेला "जी कैसा है?" भीतर जाते हुए मानो ने पूछा। जसदेव ने उठने की कोशिश की। उसके मुँह से दर्द की आह निकली।

"कमबख्त कीड़े पड़के मरेगा। हाथ–पाँव टूट–टूटकर गिरेंगे...आदमी नहीं जंगली जिनावर है।" मानो ने सूबेसिंह को कोसते हुए कहा।

जसदेव चुपचाप उसे देख रहा था।

"यह ले...रोट्टी खा ले। सुबे से भूखा है। दो कौर पेट में जाएँगे तो ताकत तो आवेगी बदन में," मानो ने रोटी और गुड़ उसके आगे रख दिया था। जसदेव कुछ अनमना–सा हो गया था। भूख तो उसे लगी थी। लेकिन मन के भीतर कहीं हिचक थी। घर–परिवार से बाहर निकले ज़्यादा समय नहीं हुआ था। खुद वह कुछ भी बना नहीं पाया था। शरीर का पोर–पोर टूट रहा था।

"भूख नहीं है।" जसदेव ने बहाना किया।

"भूख नहीं है या कोई और बात है..." मानो ने जैसे उसे रंगे हाथों पकड़ लिया था।

"और क्या बात हो सकती है?..." जसदेव ने सवाल किया।

"तुम्हारे भइया कह रहे थे कि तुम बामन हो...इसीलिए मेरे हाथ की रोटी नहीं खाओगे। अगर यो बात है तो मैं ज़ोर ना डालूँगी...थारी मर्जी...औरत हूँ...पास में कोई भूखा हो...तो रोटी का कौर गले से नीचे नहीं उतरता है।...फिर तुम तो दिन-रात साथ काम करते हो..., मेरी खातिर पिटे...फिर यह बामन म्हारे बीच कहाँ से आ गया...?" मानो रुआँसी हो गई थी। उसका गला रुँध गया था।

रोटी लेकर वापस लौटने के लिए मुड़ी। जसदेव में साहस नहीं था उसे रोक लेने के लिए। उनके बीच जुड़े तमाम सूत्र जैसे अचानक बिखर गए थे।

अपनी झोंपड़ी में आकर चुपचाप लेट गई थी मानो। बिना कुछ खाए। दिन-भर की घटनाएँ उसके दिमाग में खलबली मचा रही थीं। जसदेव भूखा है, यह अहसास उसे परेशान कर रहा था। जसदेव को लेकर उसके मन में हलचल थी। उसे लग रहा था— जैसे जसदेव का साथ उन्हें ताकत दे रहा है। ऐसी ताकत जो सूबेसिंह से लड़ने में हौसला दे सकती है। दो से तीन होने का सुख मानो महसूस करने लगी थी।

सुकिया भी चुपचाप लेटा हुआ था। उसकी भी नींद उड़ चुकी थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था, क्या करे, इन्हीं हालात में गाँव छोड़ा था। वे ही फिर सामने खड़े थे। आखिर जाएँ तो कहाँ? सूबेसिंह से पार पाना आसान नहीं था। सुनसान जगह है कभी भी हमला कर सकता है। या फिर मानो को...विचार आते ही वह काँप गया था। उसने करवट बदली। मानो जाग रही थी। उसे अपनी ओर खींचकर सीने से चिपटा लिया था।

जसदेव ने भी पूरी रात जागकर काटी थी। सूबेसिंह का गुस्सैल चेहरा बार-बार सामने आकर दहशत पैदा कर रहा था। उसे लगने लगा था कि जैसे वह अचानक किसी षड्यंत्र में फँस गया है। उसे यह अंदाज़ा नहीं था कि सूबेसिंह मारपीट करेगा। ऐसी कल्पना भी उसे नहीं थी। वह डर गया था। उसने तय कर लिया था, कि चाहे जो हो, वह इस पचड़े में नहीं पड़ेगा।

सुबह होते ही वह असगर ठेकेदार से मिला था। असगर ही उसे शहर से अपने साथ लाया था। जसदेव ने असगर ठेकेदार से अपने मन की बात कही। ठेकेदार ने उसे समझाते

हुए कहा था, "अपने काम से काम रखो। क्यों इनके चक्कर में पड़ते हो।"

जसदेव के बदले हुए व्यवहार को मानो ने ताड़ लिया था। लेकिन उसने कोई प्रतिक्रिया ज़ाहिर नहीं की थी। वह सहजता से अपने काम में लगी थी। वह जानती थी कि उनके बीच एक फ़ासला आ गया है। लेकिन वह चुप थी।

सूबेसिंह को भी लगने लगा था कि मानो को फुसलाना आसान नहीं है। उसकी तमाम कोशिश निरर्थक साबित हुई थी। इसीलिए वह मानो और सुकिया को परेशान करने पर उतर आया था। उसने असगर ठेकेदार से भी कह दिया था कि उससे पूछे बगैर उन्हें मज़दूरी का भुगतान न करे, न कोई रियायत ही बरते उनके साथ।

मानो से कुछ छुपा नहीं था। सूबेसिंह की हरकतों पर उसकी नज़र थी। उसने अपने आप में निश्चय कर लिया था कि वह उसका मुकाबला करेगी। उठते-बैठते उसके मन में एक ही खयाल था। पक्की ईंटों का घर बनवाना है। लेकिन सूबेसिंह इस खयाल में बाधक बन रहा था।

सुकिया और मानो दिन-रात काम में जुटे थे। फिर भी हर महीने वे ज़्यादा कुछ बचा नहीं पा रहे थे। पिछले दिनों उन्होंने दुगुनी ईंटें पाथी थीं। उनके उत्साह में कोई कमी नहीं थी। एक ही उद्देश्य था– पक्की ईंटों का घर बनाना है। इसीलिए सूबेसिंह की ज़्यादतियों को वे सहन कर रहे थे। लेकिन एक तड़प थी दोनों में, जो उन्हें सँभाले हुए थी।

सूबेसिंह नित नए बहाने ढूँढ़ लेता था, उन्हें तंग करने के, एक शीत युद्ध जारी था उनके बीच, सुकिया से ईंट पाथने का साँचा वापस ले लिया गया था। उसे भट्ठे की मोरी का काम दे दिया था। मोरी का काम खतरनाक था। मानो डर गई थी। लेकिन सुकिया ने उसे हिम्मत बँधाई थी, "काम से क्यूँ डरना...।"

सुकिया का साँचा जसदेव को दे दिया गया था। साँचा मिलते ही जसदेव के रंग बदल गए थे। वह मानो पर हुकुम चलाने लगा था। मानो चुपचाप काम में लगी रहती थी।

"कल तड़के ईंट पाथनी है। ईंटें हटाकर जगह बना दे।" जसदेव आदेश देकर अपनी झोंपड़ी की ओर चला गया था। मानो ने पाथी ईंटों को दीवार की शक्ल में लगा दिया था। कच्ची ईंटों को सुखाने के लिए दो, खड़ी दो आड़ी ईंटें रखकर जालीदार दीवार बना दी थी। ईंट पाथने की जगह खाली करके ही मानो लौटकर झोंपड़ी में गई थी।

हैंडपंप पर भीड़ थी। सभी मज़दूर काम खत्म करके हाथ-मुँह धोने के लिए आ गए थे।

सुबह होने से पहले ही मानो उठ गई थी। उसे काम पर जाने की जल्दी थी। चारों तरफ़ अँधेरा था। सुबह होने का वह इंतज़ार करना नहीं चाहती थी। उसने जल्दी-जल्दी सुबह के काम निबटाए और ईंट पाथने के लिए निकल पड़ी थी। सूरज निकलने में अभी देर थी। जसदेव से पहले ही वह काम पर पहुँच जाती थी।

इक्का-दुक्का मज़दूर ही इधर-उधर दिखाई पड़ रहे थे। वह तेज़ कदमों से ईंट पाथने की ज़गह पर पहुँच गई थी। वहाँ का दृश्य देखकर अवाक रह गई थी। सारी ईंटें टूटी-फूटी पड़ी थीं। जैसे किसी ने उन्हें बेदर्दी से रौंद डाला था। ईंटों की दयनीय अवस्था देखकर उसकी चीख निकल गई थी। वह दहाड़ें मार-मारकर रोने लगी थी। आवाज़ सुनकर मज़दूर इकट्ठा हो गए थे।

जितने मुँह उतनी बातें, सब अपनी-अपनी अटकलें लगा रहे थे। रात में आँधी-तूफ़ान भी नहीं आया था। न ही किसी जंगली जानवर का ही यह काम हो सकता है। कई लोगों का कहना था, किसी ने जान-बूझकर ईंटें तोड़ी हैं।

मानो का हृदय फटा जा रहा था। टूटी-फूटी ईंटों को देखकर वह बौरा गई थी।

जैसे किसी ने उसके पक्की ईंटों के मकान को ही धराशाई कर दिया था।

जसदेव काफ़ी देर बाद आया था। वह निरपेक्ष भाव से चुपचाप खड़ा था। जैसे इन टूटी-फूटी ईंटों से उसका कुछ लेना-देना ही न हो।

सुकिया भी हो-हल्ला सुनकर मोरी का काम छोड़कर आया था। ईंटों की हालत देखकर उसका भी दिल बैठने लगा था। उसकी जैसे हिम्मत टूट गई थी। वह

फटी–फटी आँखों से ईंटों को देख रहा था। सुकिया को देखते ही मानो और ज़ोर–ज़ोर से रोने लगी थी। सुकिया ने मानो की आँखों से बहते तेज़ अँधड़ों को देखा और उनकी किरकिराहट अपने अंतर्मन में महसूस की। सपनों के टूट जाने की आवाज़ उसके कानों को फाड़ रही थी।

असगर ठेकेदार ने साफ़ कह दिया था। टूटी–फूटी ईंटें हमारे किस काम की? इनकी मज़दूरी हम नहीं देंगे। असगर ठेकेदार ने उनकी रही–सही उम्मीदों पर भी पानी फेर दिया था। मानो ने सुकिया की ओर डबडबाई आँखों से देखा। सुकिया के चेहरे पर तूफ़ान में घर टूट जाने की पीड़ा छलछला आई थी। उसे लगने लगा था, जैसे तमाम लोग उसके खिलाफ़ हैं। तरह–तरह की बाधाएँ उसके सामने खड़ी की जा रही हैं। वहाँ रुकना उसके लिए कठिन हो गया था।

उसने मानो का हाथ पकड़ा, "चल! ये लोग म्हारा घर ना बणने देंगे।" पक्की ईंटों के मकान का सपना उनकी पकड़ से फिसलकर और दूर चला गया था।

भट्ठे से उठते काले धुएँ ने आकाश तले एक काली चादर फैला दी थी। सब कुछ छोड़कर मानो और सुकिया चल पड़े थे। एक खानाबदोश की तरह, जिन्हें एक घर चाहिए था, रहने के लिए। पीछे छूट गए थे कुछ बेतरतीब पल, पसीने के अक्स जो कभी इतिहास नहीं बन सकेंगे। खानाबदोश ज़िंदगी का एक पड़ाव था यह भट्ठा।

सुकिया के पीछे–पीछे चल पड़ने से पहले मानो ने जसदेव की ओर देखा था। मानो को यकीन था, जसदेव उनका साथ देगा। लेकिन जसदेव को चुप देखकर उसका विश्वास टुकड़े–टुकड़े हो गया था। मानो के सीने में एक टीस उभरी थी। सर्द साँस में बदलकर मानो को छलनी कर गई थी। उसके होंठ फड़फड़ाए थे कुछ कहने के लिए लेकिन शब्द घुटकर रह गए थे। सपनों के काँच उसकी आँख में किरकिरा रहे थे। वह भारी मन से सुकिया के पीछे–पीछे चल पड़ी थी, अगले पड़ाव की तलाश में, एक दिशाहीन यात्रा पर।

प्रश्न-अभ्यास

1. जसदेव की पिटाई के बाद मज़दूरों का समूचा दिन कैसा बीता?
2. मानो अभी तक भट्ठे की ज़िंदगी से तालमेल क्यों नहीं बैठा पाई थी?
3. असगर ठेकेदार के साथ जसदेव को आता देखकर सूबे सिंह क्यों बिफर पड़ा और जसदेव को मारने का क्या कारण था?
4. जसदेव ने मानो के हाथ का खाना क्यों नहीं खाया?
5. लोगों को क्यों लग रहा था कि किसी ने जानबूझकर मानो की ईटें गिराकर रौंदा है?
6. मानो को क्यों लग रहा था कि किसी ने उसकी पक्की ईटों के मकान को ही धराशाई कर दिया है?
7. 'चल! ये लोग म्हारा घर ना बणने देंगे।' – सुकिया के इस कथन के आधार पर कहानी की मूल संवेदना स्पष्ट कीजिए।
8. 'खानाबदोश' कहानी में आज के समाज की किन समस्याओं को रेखांकित किया गया है? इन समस्याओं के प्रति कहानीकार के दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।
9. सुकिया ने जिन समस्याओं के कारण गाँव छोड़ा वही समस्या शहर में भट्ठे पर उसे झेलनी पड़ी – मूलतः वह समस्या क्या थी?
10. 'स्किल इंडिया' जैसा कार्यक्रम होता तो क्या तब भी सुकिया और मानो को खानाबदोश जीवन व्यतित करना पड़ता?
11. निम्नलिखित पंक्तियों का आशय स्पष्ट कीजिए –

    (क) अपने देस की सूखी रोटी भी परदेस के पकवानों से अच्छी होती है।

    (ख) इत्ते ढेर से नोट लगे हैं घर बणाने में। गाँठ में नहीं है पैसा, चले हाथी खरीदने।

    (ग) उसे एक घर चाहिए था – पक्की ईंटों का, जहाँ वह अपनी गृहस्थी और परिवार के सपने देखती थी।

योग्यता-विस्तार

1. अपने आसपास के क्षेत्र में जाकर ईंटों के भट्ठे को देखिए तथा ईंटें बनाने एवं उन्हें पकाने की प्रक्रिया का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
2. भट्ठा-मज़दूरों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।
3. जाति प्रथा पर एक निबंध लिखिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

पाथना	–	साँचे की सहायता से या यों ही हाथों से थोप-पीटकर ईंट या उपला तैयार करना
मुआयना	–	निरीक्षण
दड़बा	–	मुर्गी इत्यादि को रखने के लिए बनाया गया छोटा घर
अंटी	–	गाँठ, कमर के ऊपर धोती की लपेट जिसका इस्तेमाल रुपये-पैसे रखने के लिए होता है
शिद्दत से	–	तीव्रता से
अंजाम	–	परिणाम